शोध संचयन
A Refereed Research Journal
And a complete Periodical dedicated to
Humanities & Social Science Research
ISSN 0975 1254 (PRINT)
ISSN 2249-9180 (ONLINE)
www.shodh.net

क्या चष्टन पुत्र जयदामन् शिव का भक्त था?

बीज शब्द : *वैदिक धर्म एवं संस्कृति, हिन्द-यवन, शक-पह्लव, कार्दमक वंश, क्षत्रप, आवक्ष आकृति, पृष्ठभाग, ब्राह्मी लेख, पोटिन, सीसे की मुद्रा।*

भारत एक सर्व समावेशी संस्कृति वाला राष्ट्र रहा है। भारतीय धर्म और संस्कृति का सबसे सकारात्मक पक्ष यह है कि हमने हमेशा अच्छाई को आत्मसात् किया है। इसी कारण जब विदेशी मूल की जातियों का भारतीय संस्कृति एवं धर्म से परिचय हुआ तो वे इसके प्रतिद्वन्दी नहीं बने अपितु उसके साथ घुल-मिलकर शासन-सत्ता को संचालित किया। प्रस्तुत शोध-पत्र में कार्दमक-वंशी क्षत्रों के धार्मिक झुकाव विशेषकर जयदामन के शैव मतावलम्बी होने की पड़ताल की गई है।

डॉ० देवेन्द्र कुमार सिंह
असिस्टेन्ट प्रोफेसर (एशियन कल्चर) प्राचार्य,
कालीचरण पी०जी० कालेज, लखनऊ।

वैदिक धर्म में शिव का उल्लेख अपेक्षाकृत बाद में मिलता है। ऋग्वैदिक काल में रुद्र, जिसका समीकरण आगे चलकर शिव के साथ हुआ, इन्द्र, वरुण, अग्नि जैसे अन्य देवताओं की तुलना में कम महत्त्वपूर्ण था, किन्तु पौराणिक धर्म में विष्णु और शक्ति के समान शिव का भी अपना सम्प्रदाय हुआ और शिवोपासना अत्यन्त लोकप्रिय हुई।

हिन्द-यवन, पार्सियन और कुषाणों के अतिरिक्त कुछ जातियाँ भारतीय सीमा क्षेत्र में ई0पू0 प्रथम शताब्दी के लगभग प्रवेश किया और आते ही इस देश के राजनैतिक एवं सांस्कृतिक जीवन को अपने अनुकूल बनाने का काम करना आरम्भ कर दिया और इतना ही नहीं स्थानीय लोगों की विश्वसनीयता प्राप्त करने के लिए उनके सांस्कृतिक क्रिया-कलापों को भी अंगीकृत किया। आभीरों और गुर्जरों ने तो अपनी जातीयता के नाम पर आभीरी और गुर्जरी नाम की दो प्राकृत भाषाओं का प्रचलन किया और गुर्जरों ने पश्चिमी भारत के एक हिस्से को अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान के आधार पर उस क्षेत्र को अपना नाम- 'गुजरात' दिया। चूँकि हमारे अध्ययन का क्षेत्र शकों के धार्मिक झुकाव से है, इसलिए हम उनके भारत से सम्पर्क और भारतीय धार्मिक-सांस्कृतिक जीवन को ग्रहण करने की परिस्थिति का मूल्यांकन कर रहे हैं। वस्तुतः शक मध्य एशिया के कबीलों में बड़ी ही महत्त्वपूर्ण और प्रभावशाली जाति थी। इनका जीवन खाना-बदोशी और स्वभाव लूटमारू प्रवृत्ति का था। ईसा पूर्व तीसरी सदी में इस कबीले ने मध्य एशिया के साम्राज्यों में हलचल मचा रखी थी। मेसोपोटामियाई, हखमनी और यूनानी ग्रंथों में इनके कार्यकलापों का वर्णन मिलता है। फारस के महान सम्राट दारा के शिलालेख में शक जाति का उल्लेख है। शक, जिन्हें यूनानी ग्रंथकार सीथियन कहते हैं, अपने स्वभाव के अनुरूप लूटमार करते थे और निरन्तर अशान्त बने रहे। शक घोड़े का इस्तेमाल करते थे और पूर्व में चीन की सीमा से लेकर पश्चिम में दानुब (डेन्यूब) की घाटी तक प्रत्येक सभ्यता का उच्छेद किया और तमाम उत्तरी किनारे पर अपना निवास बनाया, जिसे आजकल तुर्किस्तान कहते हैं। लेकिन शीघ्र ही मध्य एशिया के दूसरे शक्तिशाली कबीले यू-ची के विशाल गिरोह से इनकी भिड़न्त हो गयी और इन्हें पूर्व में चीन और आमू दरिया की ओर भागना पड़ा। मध्य एशिया में कबीलों की इस भिड़न्त ने चीन और भारत के व्यवस्थित साम्राज्यों के लिए गंभीर खतरा पैदा कर दिया। इस समय चीन में शीह-हुआँग-टी (247-210 ई0पू0) का शासन था। उसने सीथियन जनों के संभावित आसन्न खतरे को तत्काल समझा और अपने साम्राज्य को तहस- नहस होने से बचाने के

लिए लगभग 200 ई0पू0 में चीन की विशाल महा दीवार बनवायी। शीह-हुआँग-टी के बाद सत्ता ग्रहण करने वाले हान राजवंश ने भी इस दीवार पर सुरक्षा व्यवस्थाओं की विशेष रूप से देखभाल की। पहले शक (सीथियन) चीन के पश्चिम में स्थित चारागाहों में अपने पशुओं को चराया करते थे और धीरे-धीरे अधिक सभ्य चीनियों की सम्पत्ति प्राप्त करने के लिए थोड़े-थोड़े समय के अन्तराल पर लूटमार करने लगे थे। लेकिन दीवार का निर्माण हो जाने से चीन के दरवाजे अब उनके लिए बन्द हो गये। फलतः शकों को विवश होकर दक्षिण और पश्चिम की तरफ बढ़ना पड़ा। जिस समय मध्य एशिया में कबीलाई गतिविधियाँ बढ़ रही थीं और चीनी सम्राट अपनी सीमा रक्षा में व्यस्त थे, उस समय भारत वर्ष पर महान सम्राट अशोक शासन कर रहा था। लेकिन अशोक ने इस ओर ध्यान नहीं दिया कि पश्चिमोत्तर सीमावर्ती क्षेत्र के दर्रों जिसमें बोलन दर्रा प्रमुख है, की रक्षा कैसे हो। रामशरण शर्मा सम्राट अशोक की इस अदूरदर्शिता के लिए उसकी आलोचना करते हुए कहते हैं कि 'अशोक देश और विदेश में मुख्यतः धर्म प्रचार के काम में ही व्यस्त रहा। बल्कि मध्य एशिया में कबीलों की जो गतिविधियाँ थी उसे देखते हुए उसे पश्चिमोत्तर सीमा और दर्रों पर नजर रखना चाहिए था।'[1] सीथियन ज्यों-ज्यों भारत की ओर बढ़ रहे थे, त्यों-त्यों यू-ची कबीले द्वारा उन्हें क्रमागत रूप से खदेड़ा जा रहा था, उसी क्रम में वे पार्थियन और यूनानियों को भारत की ओर ढकेल रहे थे। इसी प्रक्रिया के दौरान यूनानियों ने उत्तर-अफगानिस्तान में बैक्ट्रिया नाम का राज्य स्थापित किया, जिस पर शकों ने कब्जा कर लिया।[2] शकों से दबकर बैक्ट्रियाई यूनानी अन्ततः 206 ई0पू0 में भारत पर आक्रमण करने के लिए विवश हो गये। रामशरण शर्मा का मानना है कि इसके बाद आक्रमणों का तांता लग गया और यह सिलसिला सदियों तक जारी रहा।[3]

जिस प्रकार शकों ने यूनानियों से बैक्ट्रिया छीना था उसी प्रकार यू-ची कबीले ने शकों से बैक्ट्रिया का क्षेत्र, अर्थात् पूर्वी ईरान और एरियान का क्षेत्र, छीन लिया। बैक्ट्रिया से निकलकर शक, पार्थियन साम्राज्य-सीस्तान, अरकोशिया, एरिया और काबुल घाटी के क्षेत्र की ओर बढ़े।[4] पुनः यू-ची कबीले का दबाव पड़ने पर वे वहाँ रुके नहीं बल्कि क्वेटा के निकट बोलन दर्रे से होते हुए सिंधु घाटी में प्रवेश किये और इस प्रकार शक समस्त सिन्ध प्रदेश में छा गये। *पेरीप्लस ऑफ द एरिथ्रियन सी* के अनुसार उन्होंने सीस्तान (शकस्तान) की तरह उस नये प्रदेश का नाम भी 'शक द्वीप' रख दिया, जहाँ से सिन्धु नदी बहती है।[5]

पार्थियनों का महान साम्राज्य आमू पार पूर्वी ईरान में खड़ा था। पार्थियन साम्राज्य के दो नरेशों-फ्रात द्वितीय (138-128 ई0पू0) और आर्तबन द्वितीय (128-123 ई0पू0) को शकों को रोकने और उनके साथ दुर्धर्ष संघर्ष में अपने प्राण गंवाने पड़े। परन्तु उनके उत्तराधिकारी मिथ्रदात द्वितीय (123-88 ई0पू0) ने शकों की बाढ़ को रोक दिया। फलतः शक हिन्दूकुश पर्वत के उस पार हेलमन्द नदी के किनारे (दक्षिणी अफगानिस्तान) रहने लगे। शकों के निवास के कारण इस स्थान को 'सीस्तान' अर्थात् 'शक-स्थान' कहा गया। लेकिन पार्थियन लोग शकों से अपने राज्य को अधिक देर तक बचा नहीं सके। मिथ्रदात द्वितीय (मिथरीडेट्स ।।) की मृत्यु (88 ई0पू0) के बाद शकों ने महान पार्थियन-साम्राज्य को तहस-नहस कर उस पर अधिकार कर लिया।[6] यहाँ से निकलकर पार्थियन ने पश्चिमोत्तर भारत में शकों के समानान्तर कुछ हिस्सों में अपनी सत्ता का संचालन किया।

भारतीय सीमा क्षेत्र में रहने और राज्य स्थापना के क्रम में शकों की दो शाखायें हो गयीं। एक शाखा उत्तरी क्षत्रप के नाम से प्रसिद्ध हुई, जिसने तक्षशिला और मथुरा में अपना राज्य शासन चलाया और दूसरी शाखा पश्चिमी क्षत्रप कहलायी, जिसने नासिक और उज्जैन में अपना राज्य स्थापित किया। उत्तरी क्षत्रपों की तुलना में पश्चिमी क्षत्रप अधिक प्रसिद्ध थे और उनका राज्य भी अधिक टिकाऊ था। यह अलग बात है कि भारत में पहला शक राजा मैयस अथवा मोग (80 ई0पू0) था, जिसने गंधार में शकराज्य की स्थापना की थी।[7] कालान्तर में उत्तरी क्षत्रप यू-ची कबीले के दबाव में पश्चिम की ओर खिसकने पर बाध्य हुए इस क्रम में वे उज्जयिनी तक बढ़े यहाँ उन्हें स्थानीय शासक का भारी प्रतिरोध झेलना पड़ा। यह घटना लगभग 57-58 ई0पू0 की है, जब उज्जैन के तत्कालीन शासक ने शकों के साथ हुए युद्ध में उन्हें बुरी तरह पराजित कर उज्जयिनी से बाहर खदेड़ दिया। इस शासक ने शकों को पराजित करने के बाद अपने को 'विक्रमादित्य' अर्थात् 'सूर्य के समान पराक्रमी' कहलाया। संभवतः यह विजयी नरेश उज्जयिनी शासक गर्दभिल्ल का पुत्र था, जिसके राज्य के कुछ बड़े भाग पर शकों ने कब्जा कर लिया था। अपने इस विजय के उपलक्ष्य में पराक्रमी शासक ने 'विक्रम संवत्' नाम का संवत् 57-58 ई0पू0 में शकों पर विजयोपरान्त प्रचलित किया, जो आज तक लोकप्रिय है। इतना ही नहीं तब से 'विक्रमादित्य' पराक्रमी भारतीय राजाओं की अत्यन्त इच्छित उपाधि बन गया। इतिहासकार रामशरण शर्मा तो इस उपाधि की तुलना रोम सम्राटों के 'सीजर' उपाधि से करते हैं और वे भारतीय इतिहास के ऐसे 'विक्रमादित्य' उपाधि धरण करने वाले 14 शासकों को गिनाते हैं।[8] चूँकि शक सूर्य उपासक थे, इसलिए जब उज्जयिनी नरेश ने सूर्य अर्थात् आदित्य उपासक शकों को पराजित किया तो उसने स्वभावतः 'विक्रमादित्य' की उपाधि धरण की। भारत में सूर्य की जो प्रारम्भिक मूर्ति मिली है, उसकी बनावट मध्य एशियाई है, वह लम्बा कोट (वेस्ट कोट) और घुटने तक जूते पहने हुए कमल

पुष्प धारण किये हुए हैं। भविष्य पुराण में कहा गया है जब साम्ब (कृष्ण और जाम्बवती के पुत्र) ने सिंध में चन्द्रभागा नदी के तट पर सूर्य का पहला मन्दिर निर्मित करवाया तो उस मूर्ति की पूजा के लिए शक-द्वीप निवासी मग पुजारी (पुरोहित) बुलाये गये, जो ईरान के रहने वाले थे।[9]

यह रोचक है कि जब विदेशी मूल की जातियों ने भारत के कुछ भू-भाग पर कब्जा कर अपना राज्य स्थापित किया तो इन्होंने क्षेत्रीय जनता पर कोई धार्मिक पूर्वाग्रह नहीं दिखाया, बल्कि उनका विश्वास जीतने के लिए भारतीय धर्मों में अपनी आस्था दिखायी। कुछ विदेशी शासकों ने वैष्णव सम्प्रदाय में अपनी आस्था दिखायी, जैसे हिन्द-यवन शासक अगाथोक्लीस के एक सिक्के के अग्रभाग पर कृष्ण और पृष्ठ भाग पर बलराम का अंकन मिलता है।[10] यूनानी राजदूत हेलियोडोरस ने विदिशा में वासुदेव की उपासना में स्तम्भ बनवाया। कुछ अन्य शासकों ने बौद्ध धर्म अपनाया, जिनमें मीनान्डर और कनिष्क प्रमुख था। लगता है क्षेत्रीय जनता के धार्मिक विश्वास पर शासकों द्वारा धार्मिक आस्था व्यक्त की जाती रही है, क्योंकि कनिष्क सहित प्रारम्भिक कुषाण शासक अपने को शिव एवं बुद्ध दोनों के उपासक बताते हैं, यद्यपि उत्तरवर्ती कुषाण शासक वैष्णव धर्म में अपनी आस्था व्यक्त करने लगे थे, जिसमें कुषाण शासक वासुदेव प्रमुख है, जो कृष्ण का एक नाम है।

भारत में प्रचलित स्थानीय धर्मों में शैव धर्म सबसे लोकप्रिय धर्म रहा है। आम जनता की शैव धर्म में आस्था के दृष्टिगत विदेशी शासकों ने भी शैव धर्म में अपनी गहन आस्था प्रदर्शित की। विशेषतौर पर उत्तरी और पश्चिमी भारत पर शासन करने वाले शासकों ने, क्योंकि प्रारम्भिक काल में कश्मीर और पश्चिमी भारत, शैव धर्म का प्रधान केन्द्र था। पश्चिमी भारत के कायारोहण में शिव के अवतार के रूप में लकुकीश लोकप्रिय हुए, इसलिए उज्जयिनी और गुजरात इस धर्म के लिए अधिक उर्वर भूमि बनी। ऐसे में जब विदेशी शासकों ने इन प्रदेशों पर अपनी सत्ता स्थापित की, तो स्थानीय जनता की धार्मिक आस्था का आदर करते हुए अपनी धार्मिक आस्था शैव धर्म में व्यक्त की।

शक-पल्लव राजाओं में मॉएस[11], एज़ेज[12] तथा एजिलाइज़ेज़[13] के कुछ सिक्कों पर एक पुरुष आकृति हाथ में त्रिशूल और गदा लिये प्रदर्शित है। त्रिशूल के आधार पर इसकी पहचान शिव से करने का सुझाव दिया गया है। गोंडोफर्नीस के एक रजत मुद्रा-प्रकार के पृष्ठ भाग पर दाहिने हाथ में त्रिशूल और बायें हाथ में ताड़पत्र लिये शिव को स्पष्ट पहचाना जा सकता है।[14] मुद्रालेख में गोंडाफेर्नीस को 'देवव्रत' अर्थात् शिव में आस्था रखने वाला कहा गया है। कुषाण राजाओं में कनिष्क के पिता विमकैडफाइसिस की सभी मुद्राओं पर शिव को मानवीय[15] अथवा प्रतीक[16] रूप में देखा जा सकता है। मुद्रा-लेख में उसे 'माहेश्वर' अर्थात् शिव का परमभक्त कहा गया है। कनिष्क-प्रथम[17], वासिष्क[18], हुविष्क[19], वासुदेव-प्रथम[20] जैसे अन्य राजाओं ने भी अपनी कुछ मुद्राओं पर शिव को स्थान दिया। मंदसौर अभिलेख से ज्ञात होता है कि हूण राजा मिहिरकुल भी शिव का भक्त था।[21]

ज्ञातव्य है कि यू-ची कबीले के दबाव में शक कबीले पश्चिम और दक्षिण भारत की तरफ खिसकते जा रहे थे। दक्षिण भारत में शकों ने नासिक को केन्द्र बनाकर शासन किया और यह शासनकर्ता वंश अपने को क्षहरात-क्षत्रप कहता था। इस वंश के प्रसिद्ध शासक भूमक और नहपान थे। उज्जयिनी में शकों की जो शाखा स्थापित हुई, वह कार्द्मक वंशी क्षत्रप कहलाये। ऐसा प्रतीत होता है कि शकों की कार्द्मक शाखा ईरान से आयी थी अथवा कोई निकटस्थ सम्बंध था, क्योंकि कार्द्मक नदी ईरान में है और यह शब्द वहीं से लिया गया था। इस वंश का राज्य शासन 130 ईसवी से 388 ईसवी तक चला, जब तक कि प्रख्यात गुप्त सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय, विक्रमादित्य ने अन्तिम शक राजा रूद्र सिंह तृतीय (375ई0-415ई0) को मारकर गुप्त साम्राज्य में नहीं मिला लिया। इस वंश के दो प्रतापी शासकों में चष्टन और रूद्रदामन का नाम विशिष्ट है।

कार्द्मकवंशी क्षत्रपों के धार्मिक झुकाव के विषय में विस्तृत सूचना उपलब्ध नहीं है। उनके चाँदी के सिक्के अधिक संख्या में प्राप्त हुये हैं, जिनके अग्रभाग पर राजा की आवक्ष आकृति और पृष्ठभाग पर पर्वत पर अर्द्धचन्द्र, नक्षत्र, अर्द्धचन्द्र और वक्ररेखा प्राप्त होती है। अग्रभाग पर कुछ निरर्थक यूनानी अक्षर हैं और पृष्ठ भाग के वृत्ताकार ब्राह्मी लेख में मुद्रा जारी करने वाले राजा का नाम और उपाधियाँ तथा उसके पिता का नाम और उपाधियाँ उल्लिखित हैं।[22] अत: अभिप्रायों एवं मुद्रा-लेखों से कार्द्मक क्षत्रपों के धार्मिक झुकाव के विषय में कुछ कहना कठिन है। ऐसी दशा में यदि किसी स्रोत से किसी कार्द्मक क्षत्रप के धार्मिक विश्वास का संकेत मिल जाए तो महत्त्वपूर्ण होगा। चष्टन के पुत्र और सर्वाधिक प्रसिद्ध कार्द्मक शासक रूद्रद्रामन्-प्रथम के पिता जयदामन् की ताम्र-मुद्रा के अग्रभाग पर ककुद-वृषभ को त्रिशूल-परशु के समक्ष खड़ा दिखाया गया है।[23] वृषभ-नन्दिन् शिव का वाहन है और सम्भव है कि जयदामन् ने शिव के प्रति अपनी आस्था के कारण अपनी मुद्रा पर शिव के पशु रूप का अंकन किया हो। यह सही है कि कार्द्मक पोटिन और सीसे की मुद्राओं पर भी ककुद-वृषभ का अंकन है।[24] किन्तु जयदामन् की मुद्रा पर वृषभ शिव के विशिष्ट आयुध त्रिशूल-परशु के सम्मुख खड़ा है, जिससे इस अभिप्राय का शिव के साथ सम्बंध होने की संभावना बढ़ जाती है।

(शेष पृष्ठ 88 पर)

है इतनी किसी ने नहीं की है। श्री रमाशंकर अवस्थी ने लिखा है- ''हिन्दी के इतिहास इस व्यक्ति विशेष से इतनी घनिष्ठता के साथ सम्बद्ध है कि अकेले द्विवेदी जी के साथ वर्तमान हिन्दी का विकास उसी तरह लिपटा हुआ है, जिस तरह किसी बड़े वृक्ष के साथ हिन्दी की लताएं लिपटी हुई होती हैं।''[15] इसतरह द्विवेदी जी का महत्त्व आधुनिक हिन्दी साहित्य का मार्ग प्रशस्त करने में रहा है।

समग्रत: हिन्दी नवजागरण में महावीरप्रसाद द्विवेदी का वैशिष्ट्य उनकी सशक्त भूमिका अदा करता है।

संदर्भ सूची:-

1. प्रेमचंद, हंस, मई, 1933
2. शर्मा, रामविलास, महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण, राजकमल प्रकाशन, चतुर्थ संस्करण, पृष्ठ 389।
3. वही, पृ0 29।
4. वही, पृ0 30।
5. वही, पृ0 383।
6. वही, पृ0 163।
7. वही, पृ0 119।
8. वही, पृ0 121।
9. वही, पृ0 143।
10. सरस्वती, 1901, पृ0 198।
11. सरस्वती, 1901, पृ0 232।
12. सरस्वती, 1905, पृ0 426 द्वितीय अनुच्छेद।
13. शर्मा, रामविलास, महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण, राजकमल प्रकाशन, चतुर्थ संस्करण, पृ0 392।
14. प्रेमचंद, हंस, द्विवेदी अभिनंदनांक, अप्रैल 1933।
15. यायावर, भारत, महावीर प्रसाद द्विवेदी का महत्त्व, किताबघर प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2003, पृ0 439।

(पृष्ठ 27 का शेष)

विमकैडफाइसिस के एक मुद्रा-प्रकार पर शिव की उपस्थिति प्रतीक रूप में त्रिशूल-परशु के माध्यम से दिखायी गयी है।[25]

जयदायमन् ने अपने पुत्र का नाम रूद्रदामन् रखा। इससे भी जयदामन् के शिव-भक्त होने की संभावना बढ़ जाती है। अत: उपरोक्त तथ्य के आधार पर यह सुझाव दिया जा सकता है कि जयदामन् शैव मतावलम्बी रहा होगा।

सन्दर्भ:-

1. रामशरण शर्मा, प्रारम्भिक भारत का परिचय, ओरियन्ट ब्लैक स्वान, नई दिल्ली, 2009, पृ0 189.
2. रोमिला थापर, भारत का इतिहास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1988, पृ0 71.
3. रामशरण शर्मा, प्रारम्भिक भारत का परिचय, ओरियन्ट ब्लैक स्वान, नई दिल्ली, 2009, पृ0 190.
4. रोमिला थापर, भारत का इतिहास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1988, पृ0 71.
5. भगवत शरण उपाध्याय, भारतीय संस्कृति के स्रोत, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1979, पृ0 69.
6. रोमिला थापर, भारत का इतिहास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1988, पृ0 71.
7. रोमिला थापर, भारत का इतिहास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1988, पृ0 71.
8. रामशरण शर्मा, प्रारम्भिक भारत का परिचय, ओरियन्ट ब्लैक स्वान, नई दिल्ली, 2009, पृ0 192-193.
9. विस्तृत विवरण के लिए देखें, डॉ0 जयशंकर मिश्र, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, 1999, पृ0 755.
10. ए0के0 नारायण, जर्नल ऑफ दि न्यूमिसमेटिक सोसायटी ऑफ इण्डिया, XXXV, पृष्ठ 73-77.
11. जी0के0 जेनकिंस तथा ए0के0 नारायण, क्वाइन टाइप्स ऑफ दि शक-पह्लव किंग्स ऑफ इण्डिया, वाराणसी, 1957, पृ0 3, संख्या 27.
12. पूर्वोक्त, पृ0 7, संख्या 18.
13. पूर्वोक्त, पृ0 10, संख्या 26.
14. पूर्वोक्त, पृ0 17, संख्या 2, 3.
15. पी0 गॉर्डनर, कैटलॉग ऑफ दि क्वाइंस ऑफ दि ग्रीक एण्ड सिथिक किंग्स ऑफ बैक्ट्रिया एण्ड इण्डिया, इन दि ब्रिटिश म्यूज़ियम्, लन्दन (भारतीय संस्करण), नई दिल्ली, 1971, फलक XXV.6] 8-
16. पूर्वोक्त, फलक XXV.10-
17. पूर्वोक्त, फलक XXVII.7-
18. ग्रिट्ली फ़ॉन मिटरवॉल्नर, कुषाण क्वाइंस एण्ड कुषाण स्कल्पचर्स फ्रॉम मथुरा, 1986, पृ0 194, चित्र संख्या 19a, b.
19. पी0 गॉर्डनर, पूर्वोक्त, फलक XXVIII.15, 16-
20. पूर्वोक्त, फलक XXIX.9, 10-
21. डी0सी0 सरकार, सेलेक्ट इंस्क्रिप्शंस, I, पृ0 419, छंद 6.
22. ई0जे0 रैप्सन, कैटलॉग ऑफ दि क्वाइंस ऑफ दि आंध्र डायनेस्टी, दि वेस्टर्न क्षत्रप्स, दि त्रैकूटक डायनेस्टी एण्ड दि ''बोधि'' डायनेस्टी इन दि ब्रिटिश म्यूज़ियम, लन्दन, (भारतीय संस्करण), नई दिल्ली, 1975, फलक X और आगे।
23. पूर्वोक्त, फलक X.265.
24. के0के0 थपल्याल एवं प्रशान्त श्रीवास्तव, क्वाइंस ऑफ एंशिएंट इण्डिया, लखनऊ, 1998, पृ0 179-180.
25. पी0 गॉर्डनर, पूर्वोक्त, फलक XXV.10.